भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप

ईश्वर के प्रति श्रद्धा, प्रेम समर्पण की भावना ही भक्ति है। भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति 'भज' धातु से हुई है, जिसका अर्थ सेवा करना या भजना है। अर्थात ईश्वर का चिंतन, प्रेम उसके गुणों का श्रवण-कीर्तन, तथा उसकी सेवा करना।

भारतीय चिंतन परंपरा में ईश्वर-प्राप्ति के तीन मार्ग बताए गए हैं - कर्म, ज्ञान और भक्ति। इनमें से भक्ति विशुद्ध भाव मूलक है। इसके लिए न तो कर्मकांड की आवश्यकता है और न तत्व चिंतन की। भक्ति मार्ग में ईश्वर की प्रति सच्ची श्रद्धा-समर्पण द्वारा ही मनुष्य मुक्तिपद को प्राप्त करता है। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को परम प्रेमरूप और अमृतस्वरूप कहा गया है। इस भक्ति को प्राप्त करने पर व्यक्ति सांसारिक इच्छाओं और मोह-माया के बंधनों से ऊपर उठ जाता है, वह आनंदमग्न हो जाता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्रद्धा और प्रेम के योग को भक्ति कहा है। भक्ति ईश्वर को पाने का सबसे सहज, सरल मार्ग है। इसी कारण आचार्यों ने भक्ति को प्रमुखता दी है। आचार्य शुक्ल मानते हैं कि भक्ति सांसारिक व्यक्ति के प्रति भी हो सकती है

और ईश्वर के प्रति भी। ईश्वर की भक्ति के बारे में विचार करते हुए शुक्ल जी कहते हैं। भक्ति का स्थान मानव हृदय है, बड़ी श्रद्धा और प्रेम के संयोग से इसका प्रादुर्भाव होता है। भक्ति को शुक्ल जी धर्म की रसात्मक अनुभूति मानते हैं। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन या सरणागति का भाव ईश्वर की भक्ति की विभिन्न साधन/प्रक्रियाएँ हैं।